© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

सांख्यकारिका प्रोक्त सृष्टि–क्रम

शैलेश कुमार द्विवेदी
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति दो तत्त्व हैं तथा इनके संसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। पुरुष के सामीप्य से प्रकृति चंचल हो उठती है। पुरुष ही आत्मा है जो देह रूपी पुर में सोया रहता है। प्रकृति का संसर्ग होने पर पुरुष की संज्ञा जीव हो जाती है तथा सृष्टि–क्रम की शुरुआत हो जाती है।

सृष्टि–क्रम में सर्वप्रथम आविर्भूत तत्त्व 'महत्' है जिसे व्यष्टि में 'बुद्धि' कहते हैं। बुद्धि प्रकृतिज होने से अचेतन है, यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तत्त्व है जो पुरुष के चैतन्य को, स्वच्छ दर्पण के समान, स्वयं में प्रतिबिम्बित कर देता है। इससे अचेतन बुद्धि चेतनवत् प्रतीत होती है और निर्गुण पुरुष सीमित साकार ज्ञाता और भोक्ता जीव के रूप में प्रतीत होता है। बुद्धि का कार्य अध्यवसाय या कार्याकार्य के विषय में निश्चय है। सात्त्विक बुद्धि के धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, से चार गुण होते हैं; तामस बुद्धि के गुण इनके विपरीत होते हैं। स्मृति और प्रत्यभिज्ञा बुद्धि में रहती है।

महत् या बुद्धि से अहङ्कार उत्पन्न होता है। यह व्यक्तित्व का तत्त्व है। अहङ्कार अभिमान की भावना है, 'अहं' (मैं) और 'मम' (मेरा) की भावना है। इसमें जीव का जीवत्व स्पष्टतया प्रतीत होता है और ज्ञातृत्व तथा भोक्तृत्व के अतिरिक्त उसमें कर्तृत्व की भावना भी आ जाती है। अहङ्कार तीन प्रकार का होता है[1]–

1. सात्विक या वैकृत जिसमें सत्त्व गुण का प्राधान्य होता है। समष्टि रूप में यह मनस, पंच कमेन्द्रियों को उत्पन्न करता है। व्यष्टि रूप में यह शुभ कर्मों को उत्पन्न करता है।
2. तामस या भूतादि जिसमें तपोगुण का प्राधान्य होता है। समष्टि रूप में यह पंच तन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। व्यष्टि रूप में यह प्रमाद, आलस्य, विषादादि को उत्पन्न करता है।
3. राजस या तैजस जिसमें रजोगुण का प्राधान्य रहता है, समष्टि–रूप में यह सात्त्विक और तामस अहङ्कार को शक्ति देता है जिससे वे अपने कार्यों को उत्पन्न करते हैं व्यष्टि रूप में यह अशुभ कर्मों का जनक है।

मनस् सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न अन्तरिन्द्रिय है। सांख्य के अनुसार इसका कार्य संकल्प अर्थात् सम्यक् कल्पना करना है'। यह इन्द्रियों से प्राप्त निर्विकल्प सम्वेदनों को सर्विकल्प रूप देकर उनकी विशेषण–विशेष्यभाव से विवेचना करता है। यह उभयात्मक है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों से सम्बद्ध रहता है।[2] मन विविध इन्द्रियों से युगपत् या क्रमशः संपृक्त हो सकता है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार मन नित्य एवं अणुरूप है तथा एक बार में एक ही इन्द्रिय से संयोग कर सकता है। सांख्य के अनुसार मन न तो नित्य है और न अणुरूप है।

सात्त्विक अहङ्कार से ही मन के अतिरिक्त पंचज्ञानेन्द्रियाँ और पंचकर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। पंचज्ञानेन्द्रियाँ चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् और श्रोत्र हैं जिनसे क्रमशः रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द की उपलब्धि होती है। पंचकर्मेन्द्रियाँ वाक्, पाणि,, पाद, पायु और उपस्थ हैं जिनसे क्रमशः वचन, आदान, विचरण, विसर्जन और प्रजनन के कर्म सम्पादित किये जाते हैं।

बुद्धि अहङ्कार और मन प्रकृतिज होने से अचेतन हैं तथा पुरुष के चैतन्य के प्रकाश से चेतनवत् प्रतीत होते हैं। ये तीनों अन्तःकरण हैं। पंचज्ञानेन्द्रियाँ और पंचकर्मेन्द्रियाँ ये दस बाह्यकरण हैं। कुल मिलाकर ये सांख्य–सम्मत तेरह करण हैं।

तामस अहङ्कार से पंचतन्मात्रायें उत्पन्न होती है। ये सूक्ष्म तत्त्व हैं। इसके नाम रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द तन्मात्रा है। ये पंचमहाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को उत्पन्न करती हैं और साथ ही उनके विशिष्ट गुणों को भी अर्थात् गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द नामक गुणों को भी उत्पन्न करती हैं। तन्मात्राओं के और गुणों के नाम एक ही हैं, अतः इससे भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए। शब्दतन्मात्रा से आकाश नामक महाभूत तथा उसका शब्द नामक गुण दोनों उत्पन्न होते हैं। शब्दतन्मात्रसहित–स्पर्शतन्मात्रा से वायु नामक महाभूत और उसके शब्द तथा स्पर्श नामक गुण उत्पन्न होते हैं। शब्दस्पर्शतन्मात्र–सहित–रूपतन्मात्रा से अग्नि या तेजस् नामक महाभूत और उसके शब्द–स्पर्श–रूप नामक गुण उत्पन्न होते हैं। शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहित– रसतन्मात्रा से जल नामक महाभूत और उसके शब्द–स्पर्श–रूप–रस नामक गुण उत्पन्न होते है। शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहित–गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी नामक महाभूत और उसके शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध नामक गुण उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार सृष्टि–क्रम प्रकृति एवं तत्प्रसूत तेईस तत्त्वों को मिलाकर चौबीस तत्त्वों का व्यापार है। सांख्य का पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष है जो प्रकृति से सर्वथा विपरीत और स्वतंत्र है तथा इस सृष्टि–व्यापार से अलिप्त है। सांख्य–सम्मत इन पच्चीस तत्त्वों में पुरुष कार्यकारणभाव से सर्वथा अलग है। वह न 'प्रकृति (कारण) है और न विकृति (कार्य)।' मूल प्रकृति केवल प्रकृति (कारण) है, विकृति (कार्य) नहीं है। महत् (बुद्धि), अहङ्कार और पंचतन्मात्रायें,, ये सात तत्त्व 'प्रकृति–विकृति' दोनों हैं (कारण और कार्य दोनों हैं)। मनस्, पंचज्ञानेन्द्रियाँ, पंचकर्मेन्द्रियाँ और पंचमहाभूत, ये सोलह तत्त्व केवल 'विकृति' (कार्य) हैं।[3] सृष्टि क्रम इस प्रकार है–

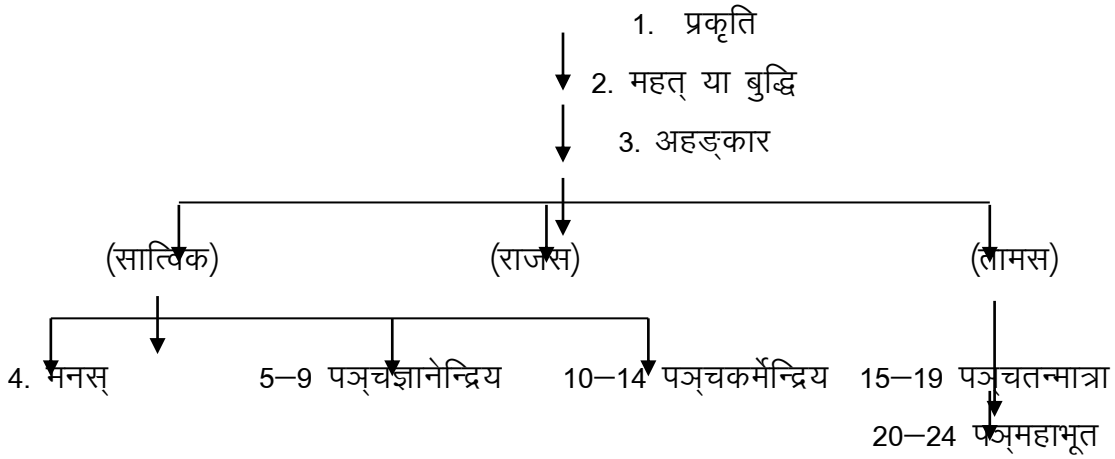

(25वाँ तत्त्व पुरुष है जो सृष्टि व्यापार से अलिप्त है।)

सांख्य के अनुसार सृष्टि का विकास प्रयोजनमूलक है। प्रकृति सहित समस्त चौबीस तत्त्व स्वयं अचेतन होते हुए भी चेतन पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रवृत्त होते हैं, चाहे वह प्रयोजन भोग हो, चाहे अपवर्ग (मोक्ष)। सांख्य कहता है कि अचेतन तत्त्व भी चेतन प्राणियों के उपभोग के लिये प्रवृत्त होते हैं, जैसे अचेतन वृक्षों में चेतन प्राणियों के उपभोगार्थ फल लगते हैं, जल परोपभोगार्थ स्रोतों और नदियों के रूप में बहता है,

तथा गाय के थानों से बछड़े के पोषणार्थ तथा अन्य जनों के उपभोगार्थ दूध निकलता है।[4] अचेतन में भी आकर्षण–क्रिया होती है, जैसे लोहा चुम्बक की ओर आकृष्ट होता है। सांख्यपुरुष, जिसे कारण और कार्य से परे माना गया है, वस्तुतः इस सृष्टि–विकास का निमित्तकारण और प्रयोजनकारण दोनों है। उसके प्रकृति के साथ संयोग या संयोगभास के बिना सृष्टि नहीं होती और प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये ही सृष्टि होती है। अरस्तू के ईश्वर के समान सांख्य–पुरुष, स्वयं निष्क्रिय होते हुये भी सारी सृष्टि–क्रिया का अधिष्ठान है, वही सारी सृष्टि की परम् 'अर्थ' है जिसकी ओर सारी सृष्टि गतिशील है। प्रकृति गुणवती, उपकारिणी और सक्रिय है जो गुणहीन, अनुपकारी, उदासीन और निष्क्रिय पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये अपने समस्त कार्य–समूह सहित नाना प्रकार के उपायों ने निःस्वार्थ भाव से सदा प्रवृत्त रहती है।[5] प्रकृति सदा पुरुष के भोग और मोक्ष के लिये कार्यरत रहती है।[6] प्रकृति के तीन गुण, प्रदीप के तेल, बत्ती और ज्वाला के समान, परस्पर विरूद्ध होते हुए भी परस्पर सहयोगी बनकर समस्त पुरुषार्थ को प्रकाशित करके उसे बुद्धि को समर्पित करते हैं।[7] सारे अन्तःकरण और बाह्यकरण पुरुषार्थ–सिद्धि हेतु कार्य करते हैं, उनका अन्य कोई हेतु नहीं है।[8] यह सूक्ष्म शरीर भी नट के समान नाना प्रकार की योनियों में अभिनय करता हुआ पुरुषार्थ–सिद्धि हेतु कार्य करता रहता है।[9] प्रथम महत्तत्त्व से प्रारम्भ होकर अन्तिम पंचमहाभूतों तक का यह सारा प्रकृति–कृत सृष्टि–क्रम प्रत्येक पुरुष को मुक्त कराने के लिये प्रवृत्त होता है।[10] अतः प्रकृति का सारा सृष्टि–व्यापार पुरुष के भोग और मोक्ष रूपी प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रवृत्त होता है। प्रकृति से अधिक गुणवती और उपकारिणी अन्य कोई नहीं है।

सन्दर्भ सूची

1. सांख्यकारिका, 25
2. उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्– वहीं 27
3. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
   षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।– वहीं, 3
4. वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
   पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य।। वहीं, 57
5. नानाविधैरुपायैकारिण्यनुपकारिणः पुंसः।
   गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमपार्थकं चरति।। वहीं, 60
6. पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। वहीं, 21
7. एते प्रदीपकल्पाः परस्परविलक्षणगुणविशेषाः।
   कुत्स्नं पुरुषस्यार्थं प्रकाश्य बुद्धौ प्रयच्छन्ति।। वहीं, 36
8. पुरुषार्थ एवं हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्।। वहीं, 31
9. पुरुषार्थहेतुकमितदं... नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्। वहीं, 42
10. इत्येष प्रकृतिकृतो महादादिविशेषभूतपर्यन्तः।
    प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः।। वहीं, 46